जलविज्ञान एवं जल संसाधन
पर राष्ट्रीय संगोष्ठी
15-16 दिसम्बर, 1995, रूड़की

जल संरक्षण तथा जल विज्ञान के क्षेत्र में शिक्षा एवं प्रशिक्षण

के.के.पालीवाल[1] के.एन.दुबे[1]

प्रस्तावना

'जल' प्रकृति का मानव को अमूल्य उपहार एवं प्राणी और प्रकृति जगत का जीवन है। यद्यपि पृथ्वी के 3/4 भाग में जल किसी न किसी रूप में विद्यमान है। समुद्र की विशाल जल राशि, पहाड़ों पर जमी बर्फ, भूमि के जल स्रोत उफनती नदियाँ, ऐसा प्रतीत होता है कि अपार जलराशि की उपलब्धता से चिन्ता की कोई बात नहीं है। किन्तु वास्तविकता इससे बिलकुल भिन्न है। समुद्र का 'जल' लवणयुक्त होने के कारण न तो पीने योग्य है न ही सिंचाई के लिए उपयोगी है। अर्थात ग्रीष्म ऋतु में समुद्र तल के वाष्पीकरण से वर्षा के रूप में प्राप्त होने वाला जल तथा पहाड़ों से बर्फ पिंघलने से प्राप्त 'जल' एवं भूगर्भीय जल ही मानव एवं प्रकृति जगत के लिए उपयोग करने योग्य है। किन्तु बढ़ती जनसंख्या, जंगलों की अन्धाधुन्ध कटाई, बढ़ता औद्योगीकरण, उद्योगों द्वारा पर्यावरण प्रदूषण, रासायनों का नदियों में प्रवाह से उपयोगी जल का प्रदूषण एक भयावट दृश्य उपस्थित करता है। इसके लिए सतत शिक्षा एवं प्रशिक्षण की नितान्त आवश्यकता है ताकि आने वाली पीढ़ियों को हम शुद्ध पेय जल उपलब्ध करा सकें।

भारतवर्ष में जल की कमी का प्रभाव

वास्तविक स्थिति यह है कि हमारे देश के राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश के बुन्देलखण्ड का धान का कटोरा कहे जाने वाले बालाघाट, राजानॅद गांव, दुर्ग, बस्तर जिले और अबूझमाए जैसे आदिवासी बहुल क्षेत्रों के ग्रामीण गम्भीर पेयजल संकट की चपेट में हैं। ग्रीष्म के मौसम में जल की कमी इन क्षेत्रों के जीवन को नारकीय बना देती है। राजस्थान में 5 से 10 किलोमीटर तक से लोग पीने का पानी एकत्र करते हैं। बूॅद–बूॅद टपकते नलों से रातभर पानी का इन्तजार करते लोग सूखे कुऐं, तालाब व नलकूपों से जैसा पानी मिलता है, उसी से अपनी प्यास बुझाते हैं। बदले में भयंकर बीमारियों गलगण्ड, नारू, ऑत्रशोथ, पेचिस आदि का शिकार बन जाते हैं। जल की कमी वाले इलाकों में 80 प्रतिशत बीमारियां प्रदूषित जल के पीने से होती है। इसी वर्ष अकेले बस्तर में 432 लोग ऑत्रशोध के शिकार हो चुके हैं।

वनो की अंधाधुन्ध कटाई

एक तरफ व्यवसायिक एवं औद्योगिक हितों के लिए वनों की कटाई हो रही है। तो दूसरी तरफ बड़े–बड़े बांधों और जलाशयों का निर्माण के लिये बहुमूल्य वन काटे जा रहे हैं। जबकि भारतीय वर्षा के स्वभाव को देखते हुए इन बांधों और बड़े जलाशयों के निर्माण का कोई औचित्य नही है। यदि नवम्बर–दिसम्बर की चक्रवातीय हवाओं को छोड़ दिया जाये तो यहाँ की कुल वर्षा जून–जुलाई से अक्टूबर के महीनों में हो जाती है। इसी दौरान आधुनिक विकास के

---

1. एफ–9, आर.ए.के. कृषि महा., सीटोर

तथा कथित मन्दिर बड़े बांधों के जलाशय भर जाते हैं। शेष जल बहकर बाढ़ों का रूप धारण कर या तो इधर–उधर तबाही मचाता है, या वनों से रहित धरती का श्ररण करके नदियों के तलछट उठाते हुए समुद्र में चला जाता है। अक्टूबर के बाद इन बांध–जलाशयों का स्तर तेजी से घटता जाता है, और गर्मी आते–आते बड़े बांधों की कलई खुल जाती है। कोई भी बांध अभी तक अपनी कुल क्षमता का 30 से 40 प्रतिशत तक की सिंचाई कर सका है। ऊपर से टूटकर ये इलाकों के कटर अलग से बरसाते हैं।

भारतीय परिवेश में जल संरक्षण

वस्तुततः भारतीय परिवेश में जल संचयन का लक्ष्य यह होना चाहिये कि वर्षा का जल जहां गिरे वहीं उसका संचय किया जावे। ऐसा गांवों के पोखर, तालाबों, बावडियों, कुओं के माध्यम से संभव हो सकता है। ऐसा करने से देश के प्रत्येक भाग में 'जल' का संतुलन बना रहेगा। और बड़े–बड़े बांधों एवं उनके जलाशयों निर्माण पर लगाए जाने वाले धन के अपव्यय को भी बचाया जा सकता है। हमारे देश में 'जल संरक्षण' की सम्पन्न परम्परा रही है। किन्तु विकास के नशे में हम इसकी लगातार उपेक्षा करते जा रहे हैं। ऐसे में नए तालाबों की खुदाई की बात कौन करे? पुराने तालाब की अपनी दुर्दशा पर आंसू बहा रहे हैं। भोपाल का बड़ा तालाब, सागर का बड़ा तालाब, इन्दौर का होलकर तालाब, तमिलनाडु का तिरूवरण्मीयूर तालाब, नैनीताल की नैनीझील, महोबा के चरखारी तालाब, सहित देश के अन्य हिस्सों में फैले तालाबों की बदहाली की यही दास्तान है। यदि इन तालाबों को ही पुनर्जीवित कर दिया जाए तो सिंचाई तथा पेयजल के साथ ही करोड़ों टन मछली उत्पादन प्राप्त करने के साथ ही हम लाखों हाथों को रोजगार के अवसर भी उपलब्ध करा सकते हैं।

त्रुटिपूर्ण जल नीति

देश की जलनीति हमारी परिस्थति एवं परिवेश के लिए उपयुक्त नहीं है। परम्परागत तौर तरीकों, कुओं, पोखरों एवं तालाबों की उपेक्षा करके, नलकूपों से भूजल स्रोतों को सुखाने का काम किया हैं। इसलिए हम उपलब्ध जल संपदा का 10 प्रतिशत हिस्सा ही उपयोग में ला पाते हैं। और गर्मी आते–आते पीने के पानी के लिए स्यापा करने लगते हैं।

उचित जल नीति की आवश्यकता

'जल' की वर्ष भर उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु एक कुशल प्रबन्ध हेतु 'राष्ट्रीय जल नीति' की आवश्यकता है। वनों का संरक्षण, पुराने तालाबों का पुनर्जीवन, नए तालाबों की खुदाई, ग्राम पोखरों को पुनर्जीवन देना, परंपरागत जल संचयन साधनों का रख–रखाव, फसल चक्र में बदलाव, दो–तिहाई भाग में होने वाली शुष्क खेती के विकास का उचित ध्यान देना। वर्ष भर पीने योग्य शुद्धजल की उपलब्धता सुनिश्चित करना। सामान्य क्षेत्रों में भी वर्षा का 2/3 भाग ही हम उपयोग में ला पाते हैं। शेष जल व्यर्थ चला जाता है। अतः वर्षा जल प्रबन्ध की उचित तकनीकी विकसित कर हम शुष्क खेती को जल उपलब्ध कराकर उत्पादन बढ़ा सकते हैं। साथ ही पश्चिम बंगाल, असम, उत्तर प्रदेश, बिहार जैसे राज्यों को बाढ़ की विभीषिका से बचाया जा सकता है।

जल संरक्षण एवं प्रबन्धन हेतु जनचेतना एवं जनशिक्षा की अनिवार्यता

जल की एक–एक बूँद के संरक्षण एवं कुशल प्रबन्धन की आज सबसे ज्यादा आवश्यकता है। इस हेतु प्राथमिक कक्षाओं, समाजसेवी संस्थाओं एव शासकीय प्रयत्नों के समन्वित प्रयास से जनचेतना जगाना होगी। सहारा के रेगिस्तानी क्षेत्रों में निवासियों ने जल प्रबन्धन एवं संरक्षण की तकनीकी विकसित करली है। जिससे एक–एक बूँद जल का संरक्षण किया जा सके। इन क्षेत्रों में एक परिवार उतना पानी उपयोग करता है जितना एक असमीया केरल निवासी एक आदमी उपयोग करता है।

हमारी सभ्यता की प्रतीक नदियाँ

नदी के किनारों पर ही विश्व की महान सभ्यताएं जन्मी हैं। सिन्धु धारी सभ्यता, मिश्र की सभ्यता, पवित्र गंगा, यमुना हमारी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की प्रतीक है, आज गम्भीर प्रदूषण की चपेट में है।

जनभागीदारी (उपसंहार)

नवीन पंचायतीराज व्यवस्था में पंचायते स्थानीय परिवेश एवं उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए जनभागीदारी के माध्यम से लघु–योजनाओं द्वारा जल संरक्षण एव प्रबन्धन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। वृक्षारोपण, पर्यावरण संरक्षण, किचिनगार्डन, पशुपालन, जलप्रबन्धन, मतत्स्य पालन, लघुउद्योग, जनशिक्षा, जनचेतना अभियानों के माध्यम से ग्राम विकास की पूर्ण इकाई जो पूर्ण आत्मनिर्भर हों के रूप में स्थापित हो सकती है तथा देश के एक–एक बूंद जल का प्रबन्धन और उपयोग कर गरीबी, बेरोजगारी, दूरकर खुशहाल एवं समृद्ध भारत के निर्माण में सहभागिता निभा सकेंगे।